ओ३म्

'जीवात्मा के मोक्ष विषयक महर्षि दयानन्द के शास्त्र सम्मत विचार'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्कर्म करके धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति है। इस पुरूषार्थ चतुष्टय में मोक्ष का विवरण वेद, दर्शन व उपनिषदों आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। महर्षि दयानन्द जी ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में इसका विस्तार से वर्णन किया है जो कि अन्यत्र दुर्लभ एवं अप्राप्त है। मोक्ष की महत्ता के कारण ही जीवन में सारे धर्म–कर्म आदि कृत्य किये जाते हैं। अतः इसका ज्ञान सभी मनुष्यों के लिए परमावश्यक है। अन्य मत–मतान्तरों में मोक्ष विषयक समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसके लिए सारी मनुष्य जाति हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों सहित महर्षि दयानन्द की चिर ऋणी है। आईये, महर्षि दयानन्द जी के मुक्ति वा मोक्ष विषयक विचारों को जानने व समझने का प्रयास करते हैं। **मोक्ष वा मुक्ति दुःख से छूटने को कहते हैं। दुःख से छूटने पर मनुष्यों की जीवात्मा सुख को प्राप्त होता है और वह ब्रह्म में रहता है।** मुक्ति प्राप्त करने के लिए जो कर्म करने होते हैं उसका विवरण प्रस्तुत है। परमेश्वर की आज्ञा पालन, अधर्म–अविद्या–कुसंग–कुसंस्कार बुरे व्यसनों से अलग रहना और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय–धर्म की वृद्धि करना, वैदिक रीति से परमेश्वर की स्तुति–प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करना, विद्या पढ़ने–पढ़ाने और धर्म से पुरूषार्थ कर ज्ञान को उन्नति करना, सबसे उत्तम साधनों को करना और जो कुछ करें वह सब पक्षपात रहित न्याय–धर्मानुसार ही करना इत्यादि साधनों से मुक्ति प्राप्त होती है। इनसे विपरीत साधनों व ईश्वराज्ञा भंग करने आदि कर्मों से ''बन्ध'' अर्थात् जन्म–मरण के बन्धन में फंसना होता है। मुक्ति में जीव का ईश्वर में लय वा विलय नहीं होता अपितु पृथक अस्तित्व बना रहता है। मुक्ति में जीव ब्रह्म में रहता है। ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है। उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रूकावट नहीं, विज्ञान (पूर्ण ज्ञान–विज्ञान पूर्वक) व आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है। मुक्ति में जीव का स्थूल शरीर नहीं रहता। सुख और आनन्द–भोग भोगने के उसके साथ सत्य संकल्प आदि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं। भौतिक संग जीवात्मा में नहीं रहता। शतपथ काण्ड 14 में मुक्त अवस्था में जीव का वर्णन किया गया है। वहां कहा गया है कि **'श्रृण्वन श्रोत्रं भवति, स्पर्शवन् स्वग्भवति, पश्चयन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् ध्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयश्चित्तम्भवत्यहङ्कुवाणोऽहंकारो भवति।।'** अर्थः मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते, किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, संकल्प–विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिए बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त, और अहंकार के अर्थ अहंकाररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है। और संकल्पमात्र शरीर होता है। वैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है, वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

अब यह प्रश्न होता है कि मुक्त अवस्था में जीव की शक्तियां कितने प्रकार की होती हैं? इसका उत्तर है कि **जीव की मुख्य शक्ति एक प्रकार की है परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण (भय), विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवयण,**

स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इन 24 प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव होता है। इन शक्तियों से मुक्ति में भी आनन्द को प्राप्त कर भोग करता है। यदि मुक्ति में जीव का लय हो जाता होता तो फिर मुक्ति का सुख न भोग पाने के कारण जीव का सत्कर्मों को करना व्यर्थ सिद्ध होता। अतः मुक्ति में जीव का लय होने की मान्यता यथार्थ नहीं है। मुक्ति में जीव का लय नहीं होता अपितु मुक्ति में जीव समस्त दुःखों से छूटकर आनन्द स्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में आनन्द से रहता है। वेदान्त दर्शन के सूत्र 4/4/10 में ऋषि व्यास के पिता वादरि जी का मत दिया गया है जो मुक्ति में जीव का और उसके साथ मन का भाव वा अस्तित्व मानते हैं। वेदान्त दर्शन के 4/4/11 सूत्र **''भावं जैमिनिर्विकल्पामनानात्''** में आचार्य जैमिनी मुक्त पुरूष का मन के समान सूक्ष्म शरीर इन्दियों और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं। स्वामी दयानन्द जी ने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा है कि **'वैसे ही शुद्धसंकल्पमय शरीर तथा प्राण और इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति भी बराबर बनी रहती है।' 'द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः'** वेदान्त दर्शन सूत्र 4/4/12 में व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानते हैं अर्थात् शुद्ध–सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता, पापाचरण, दुःख–अज्ञानादि का अभाव वह मानते हैं। कठोपनिषद् 2/3/10 **'यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्।।'** में कहा गया है कि जब शुद्ध–मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती है, और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है, उसको परमगति अर्थात् ''मोक्ष'' कहते हैं। उपनिषद के इस वचन पर टिप्पणी कर **पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने कहा है कि यह जीवनमुक्त की अवस्था है, विदेह–मुक्ति इस से उत्तर अवस्था है। विदेह–मुक्ति में उक्त अवस्था साधनरूप है। साध्य–साधन में अभेदोपचार से यहां इसे ही मोक्ष कहा है।**

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास के मुक्ति प्रकरण में छान्दोग्य उपनिषद के तीन वचनों को प्रस्तुत कर उनका भाषानुवाद दिया है। वह लिखते हैं जो परमात्मा अपहतपाप्मा, सर्व पाप–जरा–मृत्यु–शोक–क्षुधा–पिपासा से रहित, सत्यकाम सत्यसंकल्प है, उसकी खोज और उसी को जानने की इच्छा करनी चाहिये। जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है। जो परमात्मा को जान के मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है। सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता व प्राप्त होता हुआ रमण करता है। जो ये जीव ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके मोक्षसुख को भोगते हैं और इसी परमात्मा का जो कि सबका अन्तर्यामी आत्मा है, उसकी उपासना मुक्ति की प्राप्ति करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं, उससे उनको सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं। अर्थात् जो–जो संकल्प करते हैं वह–वह लोक और वह–वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। क्योंकि जो शरीरवाले होते हैं, वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते। जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा कि – 'हे परम–पूजित धनयुक्त पुरूष ! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है। जैसे सिंह के मुख में बकरी होवे, वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच हैं। सो शरीर इस मरण और शरीररहित जीवात्मा का निवासस्थान है। इसीलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है। क्योंकि शरीरसहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती ही है। और जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है, उसको सांसारिक सुख–दुःख का स्पर्श भी नहीं होता, किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

महर्षि दयानन्द की यह भी मान्यता है कि मुक्त जीव मुक्ति की अवधि समाप्त होने पर पुनः संसार में जन्म लेकर माता–पिता के दर्शन करते हैं। इसके लिए उन्होंने ऋग्वेद के 1/24/1–2 मन्त्रों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस संबंध में यह भी लिखा है कि जैसे इस समय बन्धमुक्त जीव हैं, वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त विच्छेद बन्ध–मुक्ति का कभी नहीं होता। किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती। **जीव कितनी अवधि तक मुक्ति की अवस्था में रहता है, इस प्रश्न को उपस्थित कर स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि एक परान्तकाल जिसकी अवधि 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष है, इतनी अवधि तक जीव मुक्ति की अवस्था में रहकर सुखों का भोग करता है।** महर्षि दयानन्द की यह भी मान्यता है कि जीव के कर्मों की सीमा है, अल्पज्ञ व अल्पसामार्थ्यवान् जीव के कर्म भी सीमित होते हैं, इसलिये मुक्ति का फल भी सीमित

होगा। ऐसा सम्भव नहीं है कि जीव अनन्तकाल वा सदा–सदा के लिए मुक्ति में रहे और उसका फिर कभी जन्म न हो। यदि ऐसा होगा तो सम्भव है कि एक समय ऐसा आ जाये जब सारा संसार जीवों से रहित हो जाये। सभी जीव मुक्त होकर मुक्ति में रहें। महर्षि दयानन्द के शब्द हैं–**'जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे, तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहियें।'** ईश्वर यद्यपि सर्वशक्तिमान है तथापि वह कोई नया जीव नहीं बना सकता। इस विषय का प्रश्न उठाकर स्वामी दयानन्द जी ने स्वयं ही खण्डन किया है। उन्होंने तर्क दिया है कि यदि ऐसा हो तो जीव नित्य व अजन्मा नहीं रहेगा और नित्य और अनादि न होने से आदि व उत्पत्तिधर्मा हो जायेगा। महर्षि ने प्रश्न किया है कि परमेश्वर नित्यमुक्त व पूर्ण सुखी है, वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा, तो कोई भी दोष न आवेगा? इसका उत्तर उन्होंने दिया कि परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म व स्वभाववाला है। इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता। **जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप अल्पज्ञ और परिमित गुण–कर्म–स्वभाववाला रहता है, वह परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता। मुक्ति के लिए कर्म करना सार्थक है। इसका समाधान करते हुए महर्षि दयानन्द कहते हैं कि मुक्ति जन्म–मरण के सदृश नहीं। क्योंकि जब तक 36,000 छत्तीस हजार बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना क्या यह छोटी बात है? जब आज खाते–पीते हो, कल भूख लगने वाली है, पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा तृषा, क्षुद्र धन, राज्य–प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति में लौटकर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।**

मुक्ति के कुछ अन्य साधनों में जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पापकर्मों का फल दुःख है, उनको छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करें। जो कोई दुःख को छोड़ना और सुख को प्राप्त होना चाहे, वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि **दुख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।** सत्पुरूषों के संग से विवेक अर्थात् सत्याऽसत्य धर्माधर्म कर्तव्याऽकर्तव्य का निश्चय अवश्य करें, पृथक–पृथक् जाने। इस लेख में मुक्ति वा मोक्ष का वर्णन शास्त्र प्रमाणों व महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत तर्क व युक्तियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह विषय नीरस किन्तु महत्वपूर्ण है। सभी के हितार्थ इसे प्रस्तुत किया है। आशा है कि पाठक इसे जानकर वैदिक साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्त होकर अपने जीवन को सफल बनायेंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121